International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 22-24

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 22-24
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 25-01-2015
Accepted: 10-02-2015

ममता रानी
पी0 एच0 डी0 अलीगढ
मुस्लिम विष्वविद्यालय

Correspondence
ममता रानी
पी0 एच0 डी0 अलीगढ
मुस्लिम विष्वविद्यालय

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित भक्ति की महत्ता

ममता रानी

संसार के समस्त प्रसिद्ध ग्रन्थों में श्रीमद्भगवद्गीता का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह महाभारत के भीष्म पर्व में श्रीकृष्ण–अर्जुन संवादरूप में वर्णित 18 अध्यायों का अंष है। इस ग्रन्थ में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गये आध्यात्मिक उपदेशों का वर्णन है। अनेक प्रसिद्ध आचार्यो ने अपने–अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिये गीता को आधार ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है । उन्होनें गीता में वर्णित गूढ तत्वों को जिस प्रकार से समझा वैसे ही अपने सिद्धान्त रूप में प्रस्तुत किया। श्रीमद्भगवद्गीता पर लिखा गया शंकराचार्य जी का भाष्य इन रहस्यमय तत्वों को जानने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है।

श्रीमद्भगवद्गीता को 'योगशास्त्र' की संज्ञा भी दी गयी है। 'योग' शब्द का सामान्य अर्थ है –मिलन अर्थात् जीवात्मा का परमात्मा से मिलन। अतः जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का सिद्धान्त ही योग कहलाता है। इस सम्बन्ध को स्थापित करने के लिये गीता में तीन प्रकार के मार्ग बतलाये गये हैं – (1) कर्मयोग (2) भक्तियोग (3) ज्ञानयोग। अनेक शास्त्रों में इन तीनों के विशय में पृथक–पृथक बतलाया गया है। किन्तु गीता में इन तीनों का एक साथ वर्णन प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म के दो भेद स्वीकार किये गये हैं – (1) सकाम कर्म (कामना युक्त) और (2) निश्काम कर्म (कामना रहित)। कामनायुक्त कर्मो को करने से मनुश्य जन्म–मरण के बन्धन से युक्त होकर अनेक योनियों में भ्रमण करता है। किन्तु निष्काम कर्म करने से मनुष्य जन्म–मरणरूपी बन्धन से मुक्त होकर ईश्वर के सच्चिदानन्दस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इनमें से केवल निष्काम कर्म को ही श्रेष्ठ बतलाया है। ज्ञानयोग गीता का मुख्य प्रतिपाध विषय है। सम्पूर्ण जगत् को सारहीन और आत्मा को परमात्मा समझना ही ज्ञानयोग है। परमेश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य का भाव मन में न लाना ही भक्तियोग है।

भक्ति :–

'भक्ति' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है – 'भज्' धातु 'क्त' प्रत्यय के योग से 'भक्त' शब्द बनता है। 'भज् सेवायाम्' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' इस पाणिनी के सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से भक्ति शब्द निश्पन्न हुआ है।

शब्दार्थ – कौस्तुभ के अनुसार स्त्रीलिंग 'भक्ति' षब्द के विभाजन, भिन्नता व श्रद्धा आदि अर्थ स्वीकार किये गये हैं। भक्ति मार्ग से तात्पर्य है – भक्ति का वह साधन जिसके द्वारा ईश्वर की प्राप्ति हो । [1]

आचार्य यास्क कृत 'निरूक्त' में 'साहचर्य' और 'भक्तिनि' इन दो रूपों में भक्ति शब्द का प्रयोग होता है [2]
'भक्तिसाहचर्यम्' में 'भक्ति' शब्द 'भज्' धातु ति (क्तिन्) प्रत्यय के योग से बना है। 'ति' प्रत्यय भाव और कर्म दोनो अर्थो में सम्भव है। अतः इस शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है - (प) भजनं सेवनं 'भक्तिः' अर्थात् अग्नि आदि के द्वारा लोक आदि का भजन भक्ति कहलाता है। (पप) भज्यते सेव्यते इति भक्तः अर्थात् जिसका भजन या सेवन किया जाये वह भक्ति है। कुछ लोगों ने 'भजते इति भक्ति' अर्थात् उपभोग करने वाला, यह अर्थ किया है।

'साहचर्यम्' का अर्थ है – साथ–साथ रहना। अब इन दोनों के समास से बने 'भक्ति' षब्द का अर्थ होगा, भक्ति के द्वारा होने वाला साहचर्य भाव – वे वस्तुएँ जो देवताओं के उपयोग में आती है और सदैव उनके साहचर्य में रहती हैं।

भक्ति साहित्य में, पुराणों मे नौ प्रकार की भक्ति स्वीकार की गयी है –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् अर्चनं।
वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

भक्ति के स्वरूप तथा लक्षण का निरूपण करते हुए अद्वैत वेदान्त के आचार्य शंकराचार्य कहते है :–

''स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः।''(3)

अर्थात् कुछ विद्वान् लोग स्वयं की आत्मा के अनुसंधान को ही 'भक्ति' कहते हैं।

एक अन्य स्थान पर भी भक्ति के विषय में बतलाया गया है कि परमेश्वर की कृपा से माया रूपी आवरण के हट जाने पर परमतत्त्व की अपरोक्ष अनुभूति होती है और ब्रह्म की प्राप्ति होती है। आचार्य शंकर ने मोक्षप्राप्ति के साधनों में भक्ति की श्रेष्ठता को बतलाते हुए कहा है कि मोक्षप्राप्ति के लिये अपनायी गयी तपस्या, साधना व इन्द्रियों का दमन इत्यादि विधियों से अहंभाव उत्पन्न होता है। अतः मोक्षप्राप्ति मे बाधा उत्पन्न करने वाले 'अहं' तत्त्व के नाष के लिये ईश्वरीय सत्ता अथवा गुरू के अधीन पूर्ण समर्पण की भावना से युक्त भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है।(4)

श्रीमद्भगवद्गीता में उपदेष का प्रारम्भ शरणागति से ही होता है। धर्म के विषय में मोहयुक्त हुआ अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में आकर प्रार्थना करता है – 'मैं आपका शिष्य हूॅ, आपकी शरण मे आये हुए मेरा मोह दूर कर दीजिये अर्थात् मुझे सदुपदेश प्रदान करें। (5)

भक्ति का सामान्य अर्थ है – भगवान् का स्मरण करना, भजन करना। भक्त के ऊपर भगवान् की कृपा सदैव बनी रहती है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जिसने अपने अन्तःकरण को मुझमें समर्पित कर दिया है उसका कभी भी नाश नहीं होता।(6)
भक्ति की महत्ता को बतलाते हुए भगवान् श्रीकृश्ण अर्जुन से कहते हैं – तू मुझमें लगे हुए मन वाला हो, केवल मेरा ही भक्त हो, मेरा ही गुणगान करने वाला हो और मुझको ही प्रणाम कर। ऐसा करने से तू अपने चित्त को मुझमे समाहित करके मेरे आत्मरूप को प्राप्त कर लेगा। यहॉ पर कहने का यह अभिप्राय है कि मैं सब प्राणियों का परम स्थान हूॅ। मेरी शरण में आया हुआ तू मुझ परमेश्वर को ही प्राप्त कर लेगा। (7)

परमात्मा को जानने का व उसकी प्राप्ति का जो मार्ग बतलाया गया है वह भक्तियोग है।

वेदान्त के आचार्य रामानुजाचार्य भी भक्ति को मोक्षप्राप्ति में एक महत्वपूर्ण साधन मानते हैं । ईश्वर भक्ति के द्वारा साधक ईश्वर के प्रेम, करूणा, आदि गुणों का साक्षात्कार कर लेता है। इसके पश्चात् वह स्वयं को परमश्वर को समर्पित कर देता है। ईश्वर के साक्षात्कार के लिये विवेकयुक्त भक्ति आवष्यक है। (8)

भक्ति की महत्ता के विशय में वेदान्ताचार्य मध्वाचार्य ने भी कहा है –

''परमात्मैव भक्त्या दर्षनं प्राप्य मुक्तिं ददाति।'' (9)
अर्थात् परमात्मा की भक्ति से दर्शन प्राप्त कराकर मोक्ष प्रदान करते हैं।

परमात्मा की श्रेष्ठता का उचित ज्ञान हो जाने पर उनके प्रति जो गहन श्रद्धाभाव और प्रेम होता है, उसको भक्ति कहते हैं, जो कि समस्त सांसारिक प्रेम–बन्धनों से श्रेष्ठ है। ईश्वर के प्रति ऐसा गहरा प्रेम जिसका मूलस्रोत ईश्वर के स्वरूपज्ञान की प्राप्ति में हो, वही भक्ति है। (10)

भगवान् श्रीकृष्ण भक्ति की महिमा का गुणगान करते हुए अर्जुन से कहते हैं – यदि कोई अत्यन्त बुरे आचरण वाला मनुष्य भी अनन्य प्रेम से युक्त होकर मेरा भजन करता है, तो उसको भी साधु स्वभाव वाला मानना चाहिए क्योंकि वह शीघ्र ही धार्मिक आचरण वाला हो जाता है और सदैव रहने वाली शान्ति को प्राप्त करता है। (11)

अतः इस अनित्य, सुखरहित मनुष्य लोक को प्राप्त करके मुझ परमात्मा का ही भजन कर। (12)

जिन भक्तों का चित्त मुझ परमात्मा में समाहित है, उनका मैं इस जन्म–मरण युक्त संसार रूपी समुद्र से शीघ्र ही उद्धार कर देता हूॅ। (13)

भक्ति का अर्थ उपासना भी किया जाता है। उपासना का अर्थ है – तैलधारावत् निरन्तर भगवान् का स्मरण करना। निरन्तर स्मरण करने से परमात्मा प्रसन्नचित्त होकर भक्त के समक्ष अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट कर देते है।

श्रीमद्भगवद्गीता में 'अनन्य भक्ति' पर विषेश बल दिया गया है। अनन्य भक्ति से तात्पर्य है – जो परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु में कभी नहीं होती वह अनन्य भक्ति है। अनन्य भक्ति के द्वारा ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है एवं ईश्वर से तादात्म्य की प्राप्ति होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि वह परमात्मा जिससे श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है और सभी कार्यरूप भूत जिसमें स्थित है, जिसके अन्तर्गत यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है। ऐसा यह परमात्मा अनन्य भक्ति के द्वारा ही प्राप्त होने योग्य है। (14)

यह अनन्यभाव ही भक्तियोग है। इसको गीता में अनन्यचित्त भी कहा गया है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यषः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ।। (15)

अर्थात् ऐसा अनन्यचित्त वाला योगी पुरूष, जिसका चित्त सदैव रात–दिन मेरा ही स्मरण करता है उसको मैं अनायास ही प्राप्त हो जाता है। यहॉ कहने का अभिप्राय यह है कि अनन्यचित्त वाले मनुष्य के लिये ईश्वर की प्राप्ति दुर्लभ नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं – जो भक्त अनन्यभाव से युक्त होकर निरन्तर मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते है, मुझमें स्थित उन भक्तों के योगक्षेम की मैं रक्षा करता हूं। यहॉ पर अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है और प्राप्त वस्तु की रक्षा का नाम क्षेम है। (16)

अर्जुन भगवान् श्रीकष्ण से कहता है कि हे प्रभु ! किस प्रकार की भक्ति से आपके दर्शन प्राप्त हो सकते है, तब भगवान् कहते हैं –

भक्त्या त्वनन्यमा शक्य अहमेवंविधोअर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ।। (17)

अर्थात् हे अर्जुन ! अनन्य भक्ति के द्वारा ही इस प्रकार के विश्वरूप वाला मैं जाना जा सकता हूॅ, तत्त्व रूप से देखा जा सकता हूॅ और प्राप्त भी किया जा सकता हूॅ।

जो मनुश्य मुझ परमात्मा के लिये कर्म करने वाला है और जो मेरे परायण है अर्थात् मुझको ही अपनी परमगति मानने वाला है, और जो मेरी ही भक्ति करता है तथा जो धन, पुत्र, मित्र इत्यादि में स्नेह रहित है, जो सभी प्राणियों में शत्रुभाव से रहित है, अर्थात् स्वयं को हानि पहुॅचाने वाले से भी वैरभाव नहीं रखता, ऐसा जो मेरा भक्त है, वह मुझको प्राप्त करता है। (18)

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में चार प्रकार के भक्तों का वर्णन किया है – (1) आर्त (किसी आपत्ति से युक्त हुआ भक्त), (2) जिज्ञासु (जानने का इच्छुक), (3) अर्थार्थी (धन की इच्छा वाला) (4) ज्ञानी (तत्त्व को जानने वाला)। इन चार प्रकार के भक्तों में ज्ञानी ही श्रेष्ठ है क्योंकि उसकी दृष्टि मे अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं होता। एकमात्र मुझ परमात्मा में ही उसकी अनन्य भक्ति होती है। इसलिये मैं उसे अत्यन्त प्रिय हूॅ और वह ज्ञानी भी मुझे अत्यन्त प्रिय है। (19)

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अन्त में परम उपदेश देते हुए कहा है –

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' (20)

अर्थात् समस्त प्रकार के धर्मो को छोड़कर मुझ एक की ही शरण में आ। यहॉ कहने का अभिप्राय यह है कि 'मुझ परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है, मैं ही सर्वस्व हूॅ। ऐसा निश्चय कर।

अतः निश्कर्श रूप में कहा जा सकता है कि भक्ति ईश्वर प्राप्ति के लिये एक श्रेष्ठ साधन है। यदि साधक पवित्र हृदय वाला होकर अनन्यभाव से युक्त होकर निरन्तर परमात्मा की भक्ति करता है तो परमात्मा उसके समक्ष अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट कर देते हैं। तत्पश्चात् साधक तात्विक दृष्टि से परमात्मा को जान लेता है और परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त कर लेता है। ऐसा करने से उसको नित्य शान्ति की प्राप्ति होती है। साधक परमात्मा को अद्वैत, अजर, अमर, अभय इत्यादि तत्त्वरूप से जान लेता है तत्पष्चात् वह सांसारिक जन्म–मृत्युरूपी कर्मबन्धनों से मुक्त होकर परमात्मा में प्रविष्ट हो जाता है।

1. संस्कृत षब्दार्थ कौस्तुभ, पृष्ठ – 816
2. यास्क : निरूक्तम्, 7/3, पृष्ठ – 287
3. शंकराचार्य ' विवेकचूडामणि, 33 प्रथम चरण
4. विवेकचूडामणि, 32
5. शिष्यस्तेऽहं षाधि मां त्वां प्रशन्नम् ! श्रीमद्भगवद्गीता, 2/7
6. न मे भक्तः प्रणश्यति । भगवद्गीता 9/31
7. (7) मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू ।
   मामेवैश्यसि युक्त्वैवमामानं मत्परायणः ।। भगवद्गीता, 9/34
8. डॉ0 महेन्द्र शेखावतः वेदान्त का विकास और स्वरूप पृ0 109
9. मध्वाचार्यः पूर्वप्रज्ञभाष्य, 1/1/1
10. आचार्य बलदेव उपाध्यायः संस्कृत वाड्.मय का बृहद् इतिहास, पृ0 374
11. भगवद्गीता (शांकर भाष्य) 9/30, 31
12. गीता, 9/33
13. गीता (शांकर भाष्य), 12/7
14. श्रीमद्भगवद्गीता, 8/22
15. गीता, 8/14
16. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पुर्यपासते।
    तेशां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।
    भगवद्गीता (शांकर भाष्य), 9/22
17. गीता, 11/54
18. मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः!
    निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ।।
    श्रीमद्भगवद्गीता, 11/55
19. गीता (शांकर भाष्य) 7/16–17
20. गीता, 18/66